पापी से नहीं पाप से घृणा करो

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

पाप एक प्रवृत्ति है, उसको करने वाला पापी कहलाता है। अच्छाई और बुराई सर्वत्र व्याप्त हैं। अच्छाई पुण्य है और बुराई पाप है। जैसी करनी वैसी भरनी, जैसा बीज बपन करोगें वैसा फल प्राप्त करोगें। पाप और पुण्य दोनों ही संसार में है। पाप करने वाला बुरी योनि में जाता है और पुण्य करने वाला उत्तम योनि को प्राप्त होता है। बुराई पर अच्छाई की विजय होनी चाहिए। पापकारी प्रवृत्ति करने वाला पापी होता है। मानव पाप क्यों करता है? अज्ञानता पाप करने का सबसे बड़ा कारण है। अज्ञानता के कारण मानव पाप करता है। लोभ के कारण मनुष्य पाप करता है। कुछ संस्थाएं अपने स्वार्थ के कारण पापकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देती है। कुछ संस्थाएं व्यक्तियों को लोभ के जाल में फंसाकर प्राणियों की हिंसा कराती है। ऐसी संस्थाएं मानव के मस्तिष्क में बुरी प्रवृत्तियां भर देती है। परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्ति नकारात्मक सोच के हो जाते हैं। आजकल आतंकवाद जैसी घिनोनी प्रवृत्ति के पीछे यही कार्य हो रहा है। जो व्यक्ति पाप करता है वह परिस्थितियों के वशीभूत होकर पाप करता है। मानव गलती का पुतला है। उसको सुधारना चाहिए और शुद्धिकरण का प्रयास करना चाहिए। कर्मों के वशीभूत होकर लोग पापकर्म करते है। पापी से घृणा करने से नकारात्मक भाव आते है। वहीं भाव हमें पाप से आबद्ध कर देता है। नकारात्मक भाव सुधारने का प्रयास करना चाहिए। पश्चाताप के द्वारा बुरा कार्य करने वालों को सुधारना चाहिए। पाप से घृणा करनी चाहिए, पापी से नहीं। अपराधी के पास बैठने से उसे सुधारने का प्रयास करना चाहिए। जैलों में जहां कैदी लोग बंद रहते हैं उन्हें भी सुधरने का मौका देना चाहिए। उन्हें दण्ड देकर के नहीं बल्कि उनकी गलती की अनुभूति कराकर उनमें सुधार लाना चाहिए। एक व्यक्ति को सुधारने से समाज सुधर सकता है। कारण को जानकर उसे सुधारने का प्रयास करना चाहिए। मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से उन्हें प्रभावित करना चाहिए। महात्मा गांधी ने इसी सूत्र को जीवन में

धारण किया था। उनका कहना था यदि गाल पर कोई एक थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी आगे कर देना चाहिए। यदि वह मनुष्य है उसमें मानवता है तो निश्चित ही उसे अपनी गलती का एहसास हो जायेगा और वह बुरा कर्म करना छोड़ देगा।

पुण्य और पाप अच्छे और बुरे कर्मों के फल हैं। यदि आदमी अच्छा कर्म करता है तो उसे पुण्य की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कर्म करता है तो उसे पाप का भागी बनना पड़ता है। पुण्य एवं पाप मानव सापेक्ष हैं। कोई कार्य किसी के लिए पुण्य होता है और किसी के लिए पाप। किन्तु यदि समग्र दृष्टि से देखा जाये तो पुण्य और पाप का संबंध नैतिकता और अनैतिकता से भी है। जितने भी नैतिक कार्य हैं वे पुण्य हैं और जितने अनैतिक कार्य हैं वे पाप हैं। जैन दर्शन पुण्य और पाप को एक अन्य रूप में स्वीकार करता है। अध्यात्म की दृष्टि से पुण्य और पाप ये दोनों बन्धन हैं। भारतीय चिन्तकों ने पुण्य–पाप के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। मीमांसा दर्शन ने पुण्य साधना पर अत्यधिक बल दिया। उन्होंने पुण्य को जीवन का ध्येय माना, किन्तु जैनदर्शन ने पुण्य को अपेक्षा–दृष्टि से हेय, ज्ञेय और उपादेय तीनों माना है। निश्चयनय की दृष्टि से पुण्य और पाप दोनों हेय हैं। पुण्य सुहावना है और पाप असुहावना है। लोहे की बेड़ी काली होने से भद्दी लगती है किन्तु सोने की बेड़ी में चमक–दमक होने पर भी बन्धन तो है ही। दोनो व्यक्ति को बांधकर रखती है। तलवार स्वर्ण की बनी हुई है, इतने मात्र से उसमें कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि स्वर्ण की होने पर भी प्राणनाशक तो है ही। पुण्य को आज की भाषा में प्रथम श्रेणी कारावास कह सकते हैं और पाप को कठोर कारावास। मोक्ष प्राप्ति के लिए दोनों त्याज्य हैं।

व्यावहारिक दृष्टि से पाप की अपेक्षा पुण्य श्रेष्ठ है। चूंकि पाप से नरक आदि दारुण वेदनाएँ प्राप्त होती हैं, लोक में निन्दा, अपयश और कष्ट प्राप्त होता है जबकि पुण्य से स्वर्गीय एवं कमनीय सुखों की उपलब्धि होती है। इस लोक में भी यश आदि मिलता है। जैसे विश्राम करने के लिए चिलचिलाती धूप में बैठने के बजाय वृक्ष की शीतल छाया में बैठना सुखदायी होता है, वैसे ही जीवन में पाप की अपेक्षा पुण्य श्रेष्ठ है। पुण्य दो प्रकार का है– पुण्यानुबन्धी पुण्य, पापानुबन्धी पुण्य। जो पुण्य, पुण्य की परम्परा को चला सके अर्थात् जिस पुण्य को भोगते हुए नवीन पुण्य का बन्ध हो, वह पुण्यानुबन्धी पुण्य है। जिस पाप को भोगते समय नया

पाप बंधता है, वह पापानुबन्धी पाप है, जैसे कसाई, धीवर आदि ने पूर्व भव में पाप किया, जिससे इस भव में दरिद्रता आदि कष्ट उन्हें प्राप्त हो रहा है और इस पाप को भोगते समय नवीन पापों का बन्ध कर रहे हैं अतः वह पापानुबन्धी पाप है। जिस पाप को भोगते समय नवीन पुण्योपार्जन होता है, उसे पुण्यानुबन्धी पाप कहते हैं। जो जीव पूर्वभव में किये हुए पाप के कारण इस समय दरिद्रता आदि का दुःख भोग रहे हैं, किन्तु सत्संग आदि के कारण विवेकपूर्वक कार्य करके पुण्योपार्जन करते हैं, वे पुण्यानुबन्धी पाप वाले कहलाते हैं। मानव को जीवन में पुण्यकारी प्रवत्तियां करके जीवन यापन करना चाहिए। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की भावना से पुण्यकारी प्रवृत्तियां करना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के उत्कर्ष को निरन्तर गतिशील बनाये रखने के लिए व्रत, नियम आदि के पालन और मर्यादा से अपने आचार को संवारना आवश्यक है। मनुष्य बुरा नहीं होता उसके विचार बुरे होते हैं। अतः विचारों को बदलने का प्रयास करना चाहिए।